स्वजन मिलन

(UNDERSTANDING)

**001 V1-1971, Mt.Abu- Swajan Milan-Atmanivedan**

**Read by Dr.Premlata Sharma on 30-06-1971**

आत्मनिवेदन, १३ जून, १९७१. गत सात वर्षों से मेरा निवास आबू पहाड पर रहा। सर्वोदय आंदोलन से मुक्त होने पर फरवरी १९६३ में आबू आना हुआ। श्री परमानंद कापडिया, श्री त्रिकमलाल महासूत्रा, श्री गंगादास गांधी आदि के कारण धीरे धीरे गुजरात में परिचय बढने लगा। १९६६ के अंत में श्री किशनसिंग जावडा, श्री उमाशंकर जोशी, श्री मुकुंदभाई कराशरी आदि से परिचय हुआ। १९६७ से गुजरात में प्रवचन मालाएं होने लगी, १९६८ से शिविर होने लगे, १९६९ से बनारस, पूना, बंबई इ. स्थानों में प्रवचन आदि का क्रम शुरू हुआ। कार्यक्रमों के आयोजन एवम प्रवचनों के प्रकाशन के लिये एक छोटासा प्रकाशन ट्रस्ट बनाना पडा। उस ट्रस्ट की तरफ से कुछ पुस्तकें प्रकाशित हुई, कुछ शिविर आयोजित हुए। शिविरों के लिये तथा पुस्तकों के लिये मांगे बढने लगी तब सोचा कि मित्रों को एक बार बुला लूं, अपनी जीवन दृष्टि एक बार स्पष्ट रूप से निवेदन करू।

१) अनाश्रमी हुई। चार वर्ण तथा चार आश्रमों में से किसी एक के साथ तादात्मता नहीं है। आश्रम का नाम देना ही हो तो ‘स्वभाव-आश्रम’ या ‘सहज-आश्रम’ कहा जा सकता है।

२) स्वभाव की प्राप्ति करनी नहीं पडती। प्रत्यवाय विक्षेप हटने पर स्वभाव उपस्थित ही है। स्वयंभू स्वभाव की उपस्थिती को उपलब्धि बनने देना है। विनम्रता एवम्‍ ऋजुता हो तो उपस्थिती उपलब्धि बन प्रकट होती है।

३) इसलिये मेरे पास कोई तंत्र, मंत्र, शक्तिपात, दीक्षा इ. नहीं है। जीवन से अलग कोई साधना नहीं है। समग्र जीवन सत्य के उन्मुख बने, मंगल के अभिमुख बने, शुचिता एवम्‍ सुंदरता का वरण करे। आत्मार्थी व्यक्ति जीवन की समग्रता में जागृति रखेगा तो जीवन परिवर्तन पुरुषार्थ का विषय नहीं है। एक उदात्त घटना है जो अवसर देने पर घटित हो जाती है।

४) अवसर देने का अर्थ है तन को स्वस्थ, दक्ष एवम्‍ संवेदनशील रखना। अवसर देने का अर्थ है मन को सर्वदा, सर्वथा, सर्वत्र - प्रशांत एवम्‍ प्रसन्न रखना। प्रसन्नता या प्रसाद ही मन का स्वास्थ्य है। स्वस्थ तथा संतुलित मन, मस्तिष्क अनिवार्य है। इसके लिये आहार-विहार की शुद्धि का ध्यान रखना होता है। हरेक व्यक्ति शुद्धि का रास्ता खोजे और पाये। शुद्ध जीवन पद्धति और संयम का शील, ये परिवर्तन के अधिष्ठान हैं।

५) सत्यम्‍, शिवम्‍, सुंदरम्‍ में प्रतिष्ठित होते ही व्यक्ति की ब्रह्मांड से जो कृत्रिम पृथकता थी वो शांत हो जाती है। दूसरे शब्दों में पृथकता का आभास या आरोप विसर्जित हो जाता है। व्यक्तिचेतना अपनी शून्य-सत्ता में याने अपनी ब्रह्मचेतना के रूप में प्रकट होने लगती है। इसीको मुक्तावस्था, निर्ग्रंथावस्था या कैवल्यावस्था इत्यादि नाम दिये गये हैं। अनंत प्रकारों से ये बात मैं कहती आयी हूं, कहती रहूंगी। इसके अलावा कहने को मेरे पास कुछ भी नहीं है। एक मित्र के नाते, साथी, संगी के नाते यह सत्य निवेदन करती रहूंगी।

६) जो व्यक्ति निवेदन को, सख्य संवाद को आवश्यक समझते होंगे, जिन्होंने उसकी महत्ता अपने जीवन में अनुभव की होगी, वे मेरा सहयोग करें। विमल बहन का कार्य समझकर कोई भी गवस्ति न करें। मुझे प्रचारक या कार्यकर्ता नहीं चाहिये। किसी को उपकरण या साधन बनाने की तनिक भी इच्छा नहीं है। कोई साधन या उपकरण बनने लगे तो बहनगी नहीं होता। लज्जा एवम्‍ खेद से भर जाती हूं। इसलिये मित्रों, आप मेरे सहयोगी बने। अनुयायी, प्रचारक या कार्यकर्ता नहीं। सखा बने, साथी बने, जीवन परिवर्तन के उपासक बने, सत्यम्‍-शिवम्‍-सुंदरम्‍ के प्रेमी बने।

७) तात्पर्य, आपके और मेरे सहयोग के लिये जितना अनिवार्य हो उतनी ही व्यवस्था, मॅनेजमेंट का आधार निर्माण हो। हम कोई संगठन न बनाये। अ मॅनेजिंग युनिट अँड अ‍ॅन ऑर्गनायझेशन (A managing unit and an organization) इन में मूलभूत फरक है। संगठन के लिये प्रचार अनिवार्य है, व्यवस्था के लिये स्नेह पर्याप्त है। संगठन के लिये कार्यकर्ता अनिवार्य है, व्यवस्था के लिये साथी पर्याप्त है। संगठन के लिये व्यक्ति निष्ठा या तत्व निष्ठा अनिवार्य है, व्यवस्था के लिये दृष्टि साम्य एवम्‍ मैत्री पर्याप्त है।

८) अध्यात्म में आज तक सख्य, सहयोग का आयाम या निरुपाधिक सहयोग का आयाम आजमाया नहीं गया है। अपना प्रयोग व्यक्ति, संप्रदाय एवम्‍ संगठन निरपेक्ष हो ऐसी इच्छा है। अपने हाथों भूलें होंगी, पांव लडखडाएंगे, ठोकरें भी लगेंगी किंतु एक दूसरे को सम्हालते हुए आगे बढना होगा। इससे अधिक निर्दोष या कम सदोष पद्धति मुझे दिखती नहीं है।

९) हम एकांत सेवी तथा मौन प्रेमी हों लेकिन जन विमुख न हों। उदासीन हों किन्तु सेवा तत्पर हों। सेवा तत्पर हों लेकिन सेवा की आसक्ति न हो। कर्म तत्पर हों किन्तु कार्यग्रस्त न हों। जन संपर्क हो किन्तु जन संसर्ग की उपाधि न हो। इस प्रकार की वीतरागता जीवन का एक नया आयाम है। हम वीतराग बने और साथ जीयें यह मेरा विनम्र विनय है। शिविर, गोष्ठी, प्रकाशन आदि की तरफ हम इस विज्ञानपूत मंगल नजर से देखें यह प्रार्थना है।

१०) भारत में विश्वविद्यालयों में छात्र एवम्‍ प्राध्यापक शिविर हो सकते हैं। जैसे बनारस विश्वविद्यालय में सहज क्रम चल पडा, वैसे अगर अन्यत्र होने लगा तो हम उसका स्वागत करेंगे। जहांतक संभव हो, विश्वविद्यालय के प्रांगण में शिविर हों। छात्र शिविर पांच से सात दिनों तक का हो सकता है। प्राध्यापक और अभिभावकों का शिविर तीन से पांच दिनों तक का हो सकता है।

११) स्नेहमिलन, सहजीवन, सत्यसंवाद के आयोजन भी हो सकते हैं। बंबई, गुजरात एवम्‍ सौराष्ट्र में ये आयोजन फिलहाल हों। उनमें आवश्यकतानुसार युवा शिविर एवम्‍ प्रौढ शिविर का स्वतंत्र आयोजन भी किया जा सकता है। अपनी तरफ से प्रचार किये बिना यदि कहीं से शिविर की मांग होती है, तो उसका शिविर समिती सहानुभूतियुक्त विचार करे।

१२) कामों का विभाजन हो जाय तो अच्छा। अ) प्रकाशन, वितरण समिती। ब) शिविर समिती। क) अर्थ व्यवस्था। ड) अन्य देशों से पत्र व्यवहार

१३) शिवकुटी का स्वामित्व है आदर्श ग्राम स्वराज्य ट्रस्ट का। विमल बहन के जीवन काल में यहां रहने की सुविधा ट्रस्ट ने कर दी है। विमल प्रकाशन ट्रस्ट का या अन्य किसी विमल कमिटी का इस स्थान पर कोई कानूनी हक नहीं है। आज तक शिवकुटी का स्वरूप एक घर के जैसा था। मित्र, अतिथी आते रहते थे। इ.स. १९७० से पार्वती बहन को विदा कर के उस पर्व का उपसंहार किया गया। उमा बहन मुझाला शिवकुटी में रहती हैं किन्तु उनका स्वतंत्र जीवन, साधना एवम्‍ कार्य भी रहेगा। इसलिये शिवकुटी का स्वरूप मात्र विमल निवास का रहेगा।

स्नेहाधीन आगे

विमल बहन

**002- V1-1971, Mt.Abu-Swajan Milan-Talk -30-06-1971**

पांच, छः वर्षों से भारत में भी आध्यात्मिक विषयों पर मैं बोलने लगी। वैसे तो जिन्होंने मुझे सार्वजनिक जीवन में देखा है, भूदान आंदोलन के निमित्त से, वो जानते हैं भली भाँति कि उस काम में भी अधिष्ठान यही रहा।

तो आत्मानुभव के विषय में बोलना, लेकिन जो श्रोता है उनके और मेरे बीच अंतर नहीं आने देना, ये अग्निदिव्य करना चाहती थी।

जो जैसा है वैसा कहने में और आत्मप्रत्यय में न विनयभंग है, न अहंकार है।

समाधी तक पहुँचते पहुँचते निवृत्ति का नया पसारा खडा करने की जरूर नहीं होती है।

अधिकार और अनधिकार की भाषा जिस दिन मानवीय भाषाओं मे से निकल जाएगी, अ फ्रेजिऑलॉजी, उसी दिन मुक्ति का अरुणोदय होगा।

अधिकार क्या बला है? जिज्ञासा ही अधिकार है, और कोई अधिकार नहीं। मनुष्यत्व ही अधिकार है और दूसरे किसी अधिकार की जरूरत नहीं।

एक खोजता है और रास्ते में से प्रत्यवाय को हटाता है, इसलिये भीतर का प्रकाश बाहर फैलता है। और हम खोजते नहीं हैं, ढँका हुआ उसको रहने देते हैं। इतना फरक है और कुछ फरक नहीं।

परिमार्जित मानव में ही भगवत्ता व्यक्त होगी, भगवत्ता की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है यह हम डंके की चोट कहना चाहते हैं।

सख्य में आने वाले प्रत्यवायों को आप और हम मिलकर हटाएंगे तो हो सकता है कि एक नया आयाम आध्यात्मिक संबंधों में हम और आप मिलकर खोल देंगे। इसकी मुझे बडी भूख है, इसकी प्यास है मुझे।

आत्मजिज्ञासा, मुझे लगता है कि लगभग सभी मनुष्यों के हृदय में कभी न कभी झाँकती रहती है। ऊपर उठती है, आवाज देती है, फिर हम उसको छिपाते हैं, हटाते हैं, दबाते हैं - बात अलग। लेकिन जिज्ञासा नहीं है सत्य की, सौंदर्य की, शिव की, मुक्ति की, पूर्णता की अभिप्सा नहीं है ऐसा मनुष्य तो नहीं होगा। उठती है कभी कभी। बात यह है कि हमने ये मान लिया कि इस अभिप्सा की पूर्ति के लिये हम जिसको अपना संसार या व्यवहार समझते हैं, इनसे कोई अलग साधना करनी पडेगी। ये हमने मान लिया। याने संसार की एक सत्ता और अध्यात्म की अलग सत्ता। अध्यात्म के लिये, आध्यात्मिक जीवन के लिये एक प्रकार के मूल्यों की, एक प्रकार का मूल्यांकन, एक प्रकार की जीवन पद्धति और जिसको संसार, व्यवहार कहते हो उसके लिये दूसरी पद्धति और दूसरे मूल्य - ये जब तक स्वीकार होगा न, तब तक अनर्थ है। जिज्ञासा पनप नहीं पाती इसका ये कारण है कि जिज्ञासा के लिये चैबीस घंटे में से आप एक घंटा देंगे।

और बाकी तेईस घंटे में, बाकी तेईस घंटे में उससे जो विपरीत मूल्य हैं उन सब मूल्यों को अपन व्यवहार के नाम पर चलाते हैं। तो जिज्ञासा को, जब वो झांकने लगे तो जिलाने का उपाय एक है, कि जो मूल्य अध्यात्म के लिये वही होंगे संसार के लिये। सत्य बोलना यदि परमार्थ में अनिवार्य है तो सत्यनिष्ठा ये संसार के लिये भी अनिवार्य बननी चाहिये।

सब बंधनों की जड एक वाणी के और मन के असत्य में है। सब बंधनों की जड।

साधना, साधना लोग कहते हैं, मैं कहती हूं चलो साधना बताती हूं। घर में झूठ मत बोलो, किसी भी कारण से व्यापार में झूठ मत बोलो, नौकरी में झूठ मत बोलो। जहां भी, जहां खडे हो वहां, सत्य की निष्ठा के लिये जो आहुती देनी पडे दो। वो देने की हमारी तैयारी है क्या? कोई जंगल में जाने की जरूरत नहीं, कहीं पहाड में जानेकी जरूरत नहीं और जो वाणी सत्य से प्रक्षालित नहीं है, उस वाणी से परमात्मा का नाम दिनरात जपते रहो न तो क्या होगा? इसलिये मैं कहती हूं, एक तो न ये एक उदाहरण दिया कि जिज्ञासा को जिलाना है तो चौबीस घंटे जिलाना है। एक घंटे में आर्टिफीशिअल रेस्पिरेशन से जिज्ञासा नहीं जी सकती।

तो असत्य की प्रतिष्ठा को जीवन से हटाने का साहस हम में है क्या? और कुछ नहीं। कोई बडी बात मैं आपसे करूंगी ही नहीं। दूसरा कोई पराक्रम, पुरुषार्थ, कोई बात, एक सत्य में अहिंसा भी है, अपरिग्रह भी है, प्रेम भी है, सृजनशीलता भी है, अभय भी है, सब कुछ एक सत्य में छिपा हुआ है। तो सत्य का वरण करने की और सत्य को शरण जाने की हमारी तैयारी है या नहीं? जैसा हमारी समझ में सत्य आवे, कभी कभी हमारी समझ में जो सत्य आता है वह यथार्थ नहीं भी होगा। ठोकर खाएंगे, फिर उठेंगे, कभी लडखडाएंगे, कभी गिरेंगे, कभी असफल होंगे, कभी सफल होंगे - लेकिन सफलता और असफलता को नापने के दुनिया के नाप तौल लेकर बैठेंगे तो वो नापतौल सत्यनिष्ठा के निकश पर कसे हुए नहीं हैं। उन निकशों का हमारे लिये कोई उपयोग नहीं है। उस यश और अपयश के नापने के जो नापतौल हैं, वो हमारे काम के नहीं हैं। हमारे काम का एक ही है कि सत्य बोलने से चित्त शुद्ध रहता है, सहज अभय रहता है, पाखंड से बचते हैं, दंभ से बचते हैं, दीनता-हीनता से बचते हैं। देखिये सत्य का ऐश्वर्य कैसे प्रकट होगा।

तो परमार्थ और संसार के बीच ये जो एक कृत्रिम खाई है, आर्टिफिशिअल गॅप बनी है और दो के लिये अलग प्रकार के जो मूल्य बने हैं, इनको अपने जीवन से विसर्जित करना ये पहला कदम है।

सत्य का कंडेम्नेशन। जिसकी अभीप्सा है उसको ही पहले कदम में हम कुचल देते हैं क्योंकि संसार की मान्यताओं की पकड। एक सांस में संसार को माया कहेंगे, मिथ्या कहेंगे और दूसरे श्वास में उसीसे प्रतिष्ठा हम चाहेंगे, उसीकी मान्यताओं को स्वीकार कर के चलना चाहेंगे। तो कैसे चलेगा? ये जीवन द्विसत्ता-वाद में बट जाएगा।

हां तो सारा समाज यदि सत्यनिष्ठ होता तो यहां बैठ कर मुझे बोलना ही नहीं पडता कि सत्यनिष्ठा पर हम चले। प्रतिकूल है। ये तो लंका में बिभीषण का घर जैसे होगा, जिसकी वाणी में सत्य होगा। कठिण तो होगा, कुछ आहुति नहीं पडेगी ये तो नहीं है। लोग अव्यवहारिकता की पदवी आपको नहीं देंगे ऐसा भी नहीं है। तो समाज की तुलना को, स्पर्धा को, महत्वाकांक्षा को, यश-अपयश को, इन सब को लेना है और फिर हम जिज्ञासा रखते हैं ये भी कहना है - ये अपन समझ लें। ये नहीं छूटाता है तो कहना चाहिये कि आत्मजिज्ञासा अपनी जागृत नहीं हुई है। अथा तो आत्मजिज्ञासा। अथा तो ब्रह्मजिज्ञासा - नहीं, कुतूहल है जिज्ञासा नहीं है।

तो निर्णय पहले ही कदम में, पहले ही चरण में करना होता है।

अध्यात्म आग है - और आग कैसी? सत्यनिष्ठा की आग। इसको हम लोग पकड नहीं पाते। मैं सच कहती हूं, जो लोग अध्यात्म में आगे बढ नहीं पाते हैं, इसका दूसरा कोई कारण नहीं हो सकता सिवाय इसके कि सत्य का महिमा, या तो बुद्धिगत नहीं हुआ, या तो बुद्धिगत होकर भी आचरण में लाने का टाला जाता है, कोई न कोई दलील दे कर के।

अब सत्य से और सत्य निष्ठा से क्या मतलब उसको भी देखे। जो जैसा दिखता है, जो जैसा प्रत्यय है भीतर, उस प्रत्यय के अनुसार भी क्या कहूं, उस प्रत्यय को व्यक्त करना, उस प्रत्यय को जीना। हम जैसे हैं वैसे व्यवहार में प्रकट होना - काया, वाचा, मनसा। बनने की, बनाने की, ठगने की, दिखाने की, छुपाने की, हटाने की, टालने की, किसी भी प्रकार की चेष्टा नहीं। जैसे हैं वैसे हैं। प्रत्यय न हो वह बात वाणी से न निकालना। जो जीया नहीं गया है, वो दूसरों से नहीं कहना। जो जितना जीया गया उतना बोलो। जो जैसा दिखता है वैसा ही वाणी ने धारण करना। फिर अतिशयोक्ति नहीं होगी, फिर अव्याप्ति नहीं होगी, फिर अन्यथा ख्याति नहीं होगी।

जीवन की फलश्रृति जीने में है। दूसरा तो जीवन का कोई प्रयोजन नहीं, उद्देश्य नहीं है।

अपनी प्रत्येक रिलेशनशिप, प्रत्येक संबंध इनव्हेस्टमेंट हो जाता है सामने वाले व्यक्ति को खुश और राजी रखनेका। फिर चिंता रहती है नं, फिर स्ट्रॅटेजी

जीवन की गति स्वाधीन नहीं, पराधीन। फिर हमारी शांति भंग करनेकी क्षमता भी दूसरों में आ जाती है।

ये है अध्यात्म के रास्ते में प्रत्यवाय।

विघ्न तो वहां बैठे हैं सब और हम उनको खोज रहे हैं कि ध्यान में

आप मुझे गलत न समझें। ऐसी सत्यनिष्ठा से जीनेवाले व्यक्ति का जीवन आज के समाज में सुखद होगा ये नहीं कह रही हूं। सुखद नहीं होगा। स्मूद रनिंग तो नहीं होगा। स्मूद सेलिंग नहीं होगा। लोग हसेंगे, लोग ठगना चाहेंगे। ठगेंगे भी। मूर्ख कहेंगे। ये सब होगा। तो विरोध होगा, असहयोग होगा, घरमें होगा।

फिर कहते हैं कि उनको दुःख नहीं होगा इस ढंग से घुमा, फिरा कर बात करने गये। याने परिधि पर घूम कर के आ गये, केंद्र में जो बात है उसको नहीं कहा क्योंकि कहने से दुःख होता है। तो दूसरों को दुःख होगा, इतनी पर्वा, इतनी चिंता है दूसरे के दुःख की, कि दूसरे को दुःख होगा इसलिये हम परिधि पर घूम कर के आये कि बात कही भी - नरो वा कुंजरो वा, कही भी और नहीं भी। हम इतने चतुर बने हैं, आत्मवंचना की कोई सीमा नहीं है।

नादात्मिका पराशक्ति नादरूपो महेश्वरः। प्रत्येक शब्द में उठने वाले जो नादरूप महेश्वर के स्पंदन है उनको पकड नहीं पाते हो, कान बंद करके फिर भीतर का नाद सुना तो आध्यात्मिक हो गया।

तो ये जो वृक्ष हैं, पहाड हैं, नदियां है, आकाश है, मनुष्य है, इन में जो भगवत्ता प्रकट हो रही, वो जो भगवत्ता का दिव्य रूप है, उसको नहीं देखना है और आंखे बंद कर के रूप दिखा, कोई लाल प्रकाश और कोई आकार दिखा तो वो हो गया आध्यात्मिक।

अध्यात्म की साधना के नाम पर जीवन से परावृत्त नहीं होना है। जीवन में बैठकर जहां जी रहे वहीं पर सत्य को जीने का पुरुषार्थ करना है। ये वो अध्यात्म साधना अँटिसोशल नहीं बनेगी, आयसोलेशन में नहीं बनेगी, छायेगी नहीं।

आहुतियां पडेंगी सत्य की वेदी पर। जो यज्ञ चल रहा है निरंतर, उसमें सत्यनिष्ठ की आहुतियां पडेंगी। ऐसी आहुति अपना जीवन बन जाय तो क्या बुरा है?

जहां असत्य की प्रतिष्ठा है वहां सत्यनिष्ठ उपेक्षित नहीं होगा तो क्या होगा? हिंसा का तांडव है वहां प्रेम और अहिंसा की वंशी बजाने वाला जो है, वो अपमानित नहीं होगा तो क्या होगा?

झूठ बोलने से जो आत्मा की हानी है, उससे अधिक हानी तो पति और पत्नी और मां नहीं कर सकते। लेकिन पल भर की राजी और खुशी दूसरे व्यक्ति के रहने के लिये, आत्मा का भव भव का नुकसान जो खरीद लेते हैं उसका क्या? ग्रंथि जो बनाते है उसका क्या?

**003-V2-1971,Mt.Abu-Talk -Swajan Milan 01-07-1971**

बहिर्मुखी इंद्रियां हैं, अंतर्मुखी इंद्रियां हैं। उनका ठीक उपयोग करना यदि मानव सीख ले तो व्यक्त और अव्यक्त, दोनों के द्वारा प्रकट होने के लिये आतुर परमात्मा से उसका मिलन होता है।

इंद्रिय विषयों के संबंध में से प्रभुका साक्षात्कार न हुआ तो संबंध व्यर्थ गया। इंद्रिय और विषय के संबंध में से विषयानंद या ब्रह्मानंद नहीं, जीवनानंद मिलना चाहिये। विषयानंद के विरोध में खडा हुआ ब्रह्मानंद किसी काम का नहीं। इन दोनों के द्वंद्व से मुक्त जो जीवनानंद, वह लूटने और लुटाने के लिये हम यहां आये हैं।

लेकिन सुख और दुःख के गवाक्षों में से हम झांकते नहीं। सुख और दुःख में उलझ जाते हैं इसलिये जीवन का आनंद लूट नहीं पाते।

सागर किनारे वो चमकीले पत्थर बटोरने वाले बच्चे और उन मन के अंचल में सुख-दुःख के संवेदन बंटोरने वाला मानव, इनमें क्या फरक?

पंचकर्मेंद्रियां देखी, उनका संबंध देखा, उनसे होने वाले संवेदन देखे। ज्ञानेंद्रियां देखी, उनके जो गंतव्य स्थान, उनको देखा, उनसे उठने वाले संवेदन देखे। अब देखेंगे कि ये सब जो हैं, ये शांत रहने पर और एक इंद्रिय खुलता है। यदि कहूं कि परा, पश्यंति, मध्यमा, वैखरी चारों वाणियों से सूक्ष्म वाणी मौन है, वाणी ही है पांचवी। जैसे जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या इन चार अवस्थाओं के परे ‘सहज’ नाम की जो अवस्था है, वो भी अवस्था ही है। अवस्था हम चार नहीं कहते, पांच कहते हैं, वो भी अवस्था है।

मौन नाम के करण से, इंद्रिय से परिचय पाना है। मन की कोई भी क्रिया ध्यान नहीं। जिस क्रिया में मन का विनियोग करना पडे, बुद्धि का विनियोग करना पडे वो ध्यान नहीं है।

इसलिये जहां तक अनुभूति का क्षेत्र है और अनुभुति का संवेदन उठता है, वहां तक मन काम कर रहा है और मन की कोई भी क्रिया बहिर्मुखी, अंतर्मुखी - ध्यान नहीं।

ध्यान अवस्था है समग्रता की और मौन केवल द्वार खोलता है। मौन का जो करण है वो काम करेगा।

इसलिये जहां तक अनुभूति का क्षेत्र है और अनुभुति का संवेदन उठता है, वहां तक मन काम कर रहा है और मन की कोई भी क्रिया बहिर्मुखी, अंतर्मुखी - ध्यान नहीं।

तो मौन ये अंतिम, क्रिया का अंतिम मुकाम मौन है। क्योंकि साक्षित्व भी सूक्ष्म क्रिया ही है। साक्षित्व भी शांत होता है। तब जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्या से भिन्न एक अवस्था, तब वाचा और मौन से भिन्न एक अवस्था, क्रिया और अक्रिया से भिन्न एक अवस्था, देहभाव और आत्मभाव से भिन्न एक अवस्था का जन्म होता है।

**004,V3-1971- Mt.Abu-Talk -Swajan Milan-02-07-1971**

ये सहयोग आप करेंगे, प्रभु आप से कराएंगे। उनके हाथों में जीवन के सूत्र बचपन में सोंप दिये तो किसी न किसी सज्जन के हृदय में प्रेरणा देकर जिलायेंगे और कुछ प्रारब्धवश प्रवृत्ति कर ली है तो करा लेंगे। तो कृतज्ञता उसके लिये है चित्त में लेकिन सहयोग से अभिप्राय वो नहीं।

ये बहिरंग जीवन जो है, इसमें सहयोग होता रहेगा। जैसे अपने ग्रहस्थाश्रम को, परिवार को आप चलाते हैं वैसे स्नेहवश इसको भी चला लेंगे आप, जैसे चला रहे हैं। उससे भूख हमारी शांत नहीं होती। बडे लालची व्यक्ति हैं। सज्जन लोग आप मिलें, ये सम्हाल लेते हैं। लेकिन ये बाहर के साथ से संतोष नहीं होता। जरूरतें पूरी होती हैं, वो प्रारब्ध कहीं न कहीं से करा देगा। लेकिन संतोष नहीं होता, प्यास नहीं बुझती।

वो बहिरंग में साथ देते हैं अब अंतरंग में साथी कैसे बने?

बाहरसे हाथ में हाथ मिलाएं या आप चरण में सिर लगाकर प्रणाम करें, गौण है। सख्य का असल निर्देश वहां नहीं होता। कोई भाउक है तो पांव पडेगा, कोई भाउक नहीं है तो ऐसे भी हाथ जोड लेगा। कोई बहोत प्रेमी है तो आलिंगन में, बाहों में हमें धर लेगा, ये तो गौण है। याने पांव में प्रणाम नहीं करेगा, सिर नहीं रखेगा तो सख्य होगा ऐसा मत समझिये और हाथ पकडकर के हाथ मिलाएगा तो उसकी श्रद्धा हमपर नहीं है, ये भी मत समझिये। ये तो अपनी अपनी इमोशनल इडिऑसिंक्रसी की सहज अभिव्यक्तियां हैं। इनको बहोत महत्व मत दीजिये और इन पर से एक दूसरे का जजमेंट और निर्णय, मूल्यांकन मत कीजिये।

जागने वाले का सख्य स्वयं जागते रहने से ही होगा। बारा महिने आप जहां रहना है, वहां आपका जीवन सत्यनिष्ठ बने, वहां आपका जीवन आत्मावलंबी बने तो वो सख्य होगा।

मैं जब कहती हूं कि आप मेरे साथ सहयोग करें, तो उसका भीतर से अभिप्राय ये है कि ऐसी ही आत्मरति में आप जीयें।

वो अनुग्रह आप पर हो, लेकिन तब तक आप जहां हैं वहां से सहयोग कैसे करेंगे? आप के जीवन में असत्य झर जाय, पतझर की ऋतु में वृक्षों के पत्ते झरते हैं ऐसे झर जाय। क्रोध, घृणा, ईर्षा, द्वेष, स्पर्धा ये सब जो जीर्ण विकार हैं, शीर्ण विकार हैं ये सब झर जाय। तो निष्पर्ण वृक्ष के जैसी जब आपकी चेतना खडी होगी, तो वो होगा हमारे साथ सख्य।

यात्रा करनी है हमारे साथ, याने आपके देह में रहते हुए, आप ही की आत्मा तक आपको पहुंचना है। विमल बहन के साथ कहीं नहीं जाना है। देह की, देह में ही रहते हुए, आत्मा की यात्रा है।

गोपी का कृष्ण के लिये विरह और श्रीमद्‍ का आत्मार्थियों के लिये विरह एक कोटि का था। ऐसी कुछ विरह की दशा हमारी है। आत्मार्थी को छोडकर दूसरे का संग प्रिय नहीं लगता।

सहयोग करते हुए वो सहयोग यदि आपकी साधना बने तो ही करे और साधना न बने, उपाधि बने तो ठुकरा दीजिये इस प्रवृत्ति को और उस विमला बहन को। जब हमने कहा कि ये विमल बहन का काम नहीं, अपना काम है तो अपने काम से मतलब अपनी साधना। पुस्तिका का संपादन करते हुए ये साधना है, ये अर्चना है, ये पूजा है, ये जप है, ये ध्यान है, ये वृत्ति रह सकी और संपादन करते करते कुछ सीख सके तो करो। नहीं तो एक अक्षर प्रकाशित न हो तो उसका रंजमात्र खेद यहां नहीं है। बोलते समय शब्द जिसके लिये बोला गया वो बोला गया। न छपे तो चिंता नहीं। छप गयी तो विरोध नहीं। लेकिन वो संपादन का कार्य यदि आपकी साधना नहीं है और उसमें आपकी आत्मोन्नति नहीं होती है तो विमल बहन के लिये मत कीजिये। ऐसी विमल बहनें हजारों आयेंगी, जायेंगी; आपके आत्मा का नुकसान हो तो कौन भरेगा?

शिविर की व्यवस्था करनी है, उसमें यदि मित्रों के साथ मिलने में, प्रवचन सुनने में ये भाव रहता है कि इसमें कुछ साधना होगी, तो कीजिये। नहीं तो हम ये काम कर रहें हैं, हम काम कर रहें हैं, देश का कर रहे हैं इस का एक अहंकार होता है, धर्म का कर रहें हैं इसका अहंकार होता है। उस प्रकार एक अध्यात्म का काम कर रहें हैं किसीका, ये भी अहंकार होगा। फिर आपस आपस में तुलना होगी, कौन ज्यादा करता है, कौन कम करता है। फिर ईर्षा हो सकती है। स्वाभाविक है कि काम करने वाले को हमारे पास दैहिक रीति से ज्यादा आना जाना होगा, बोलना पडेगा, फिर उसकी ईर्षा आपस में होगी। नुकसान होगा, देखिये न कितनी क्षति हो और कोई हमारे प्रारब्ध काटने के लिये हमको जो करना पड रहा है उससे मित्रों का यदि आत्मा का नुकसान हुआ तो हम कहां भरने जाएंगे भाई? हम अपराधी न साबित होंगे भगवान के सामने?

अपने आत्मोपलब्धि के प्रश्न को छोडकर, आत्मावलंबन के, आत्मरति के प्रश्न को छोडकर अन्य जो प्रश्न हैं, जो आप खुद जिनको हल कर सकते हैं और जो करने ही पडेंगे आपको खुद को, उसमें समय न खोया जाय। ये भी तो हो सकता है, ये भी एक सहयोग का प्रकार हो सकता है।

क्योंकि आत्मार्थी के मार्ग में कठिनाइयां, दिक्कतें, मुसीबतें आने वाली हैं।

तो ऐसे अपनी मुसीबतों को सहन करना यही तो पंचाग्नि साधन है, और क्या होता है? नर्मदा किनारे बैठकर के, तपी हुई रेत में, मध्यान्ह के समय सूर्य के किरणों का ताप लेना और अग्नि जलाना ये नहीं पंचाग्नि साधन। बहुत स्थूल हुवा। ये संसार पंचाग्नि साधन ही तो है और क्या? साधकों के लिये संसार में रहना, लंका में बिभीषण का रहना और भोगवादियों के बीच आत्मार्थियों का रहना एक जैसा ही तो है भाई। ये पंचाग्नि साधन ही है।

अरे तो श्वास श्वास में सीखना है यहां, यहां तो सीखने के लिये आये हैं। सीखने में आत्मविश्वास कैसे, आत्मग्लानी कैसे? सीखने में उत्तेजना कैसी? कोई चीज सध गयी तो उत्तेजना कैसे, नहीं सधी तो निराशा कैसी? तो चित्त को निरद्वंद्व रखते हुए, इनमें से पार होना है।

तो अपना काम समझकर करें याने, संसार गृहस्थाश्रम चलाना भी आपका काम नहीं, आपका काम तो आत्मार्थी बनना है।

तो ये जैसे सधेगा तो जिस प्रेमचर्य में, सत्यचर्य में आप जिसको विमल बहन कहते हैं, उसको परिवार, ज्ञाति, कुल, देश, वंश, सब से उठाकर विश्व आकाश, वैश्विक चेतना के मुक्त आकाश में लाकर रखा, वैसे वो विश्व चेतना आपको भी रखेगी। फिर विरजा का जन्म होगा।

लेकिन हम तो मरने की घडी तक हरे ही हरे पत्ते हैं। फिर झडते समय हरे बाप, बडी वेदना होती है। फिर एक झटका देकर के निकालना होता है। तो यमराज निकालते हैं। अपने आप हम नहीं गिर पडते। मृत्यू का फिर वरण नहीं होता है। मृत्यू से फिर निधन नहीं होता। फिर मृत्यू जीवन से अधिक उज्वल महाकाव्य नहीं बनता। वेदनामय, कष्टमय, घृणित-सी घटना हो जाती है।

इसलिये आपकी जिज्ञासा, सत्यनिष्ठा की और प्रेम की आंच देकर के खूप परिपक्व होने दीजिये। लेट इट सिमर अँड बॉइल। ये सारी एक एक जो प्रारब्धवश प्रवृत्ति करनी पडती है न वो इंधन समझिये, इंधन जो लगाते हैं चूल्हे में।

जहां जिज्ञासा परिपक्व हुई वहां देह की, कुल की, ज्ञाति के बंधन में आत्म परमात्मा रखेंगे ही नहीं।